International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 15-02-2026, Accepted: 16-03-2026, Published: 31-03-2026
Volume 8, Issue 1, 2026, Page No. 34-37

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में स्त्री शिक्षा: एक अध्ययन

रोली सिंह[1], डॉ अर्चना पाण्डेय[2]
[1] शोधार्थी, श्यामेश्वर महाविद्यालय, सिकरीगंज, दी द उ गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश, भारत
[2] असिस्टेंट प्रोफेसर, श्यामेश्वर महाविद्यालय, सिकरीगंज, दी द उ गोरखपुर विश्वविद्यालय ,गोरखपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा को मानव जीवन के सर्वांगीण विकास का प्रमुख साधन माना गया है। विशेष रूप से स्त्री शिक्षा का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है, क्योंकि स्त्री को परिवार और समाज के निर्माण की आधारशिला माना गया है। प्रस्तुत शोध–पत्र में वैदिक, उत्तरवैदिक, बौद्ध तथा अन्य प्राचीन कालखंडों में स्त्री शिक्षा की स्थिति, स्वरूप, पाठ्यक्रम, पद्धतियों तथा सामाजिक प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। यह अध्ययन ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है तथा विभिन्न प्राचीन ग्रंथों, वेद, उपनिषद, पुराण, स्मृतियों आदि के आधार पर किया गया है। शोध से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में स्त्रियों को शिक्षा का पर्याप्त अवसर प्राप्त था, किंतु समय के साथ इसमें गिरावट आई। वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सुधार हेतु प्राचीन भारतीय स्त्री शिक्षा के आदर्शों का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है।

मूल शब्दः स्त्री शिक्षा, वैदिक काल, प्राचीन भारत, शिक्षा प्रणाली, भारतीय ज्ञान परंपरा

भारत विश्व का प्राचीनतम देश एवं एक जीवंत राष्ट्र है। यह सर्वमान्य है कि किसी भी प्राचीन सभ्यताओं में नारी को इतना गौरव, गरिमा तथा उच्चतम सम्मान नहीं दिया गया, जितना भारत में। यह भी नितांत सत्य है कि कोई भी धर्मग्रन्थ, दर्शन, शिक्षाशास्त्र, साहित्य, भाषा तथा इतिहास नारी का इतना ऋणी अनुभव नहीं करता, जितना भारतीय जनमानस ।[1] नारी अपने विभिन्न रूपों– माँ, पत्नी, बहन तथा पुत्री में सर्वदा पूजनीया तथा श्रद्धा की पात्र रही है। नारी को साक्षात् शक्ति तथा भक्ति का अवतार माना गया है। नर को नारी से ही माना गया है। उसे सृष्टि का आधार माना गया है। अतीत से वर्तमान तक भारत के ऋषियों–मनीषियों ने, दार्शनिकों एवं लेखकों, चिंतकों ने उसे निर्मला, अत्यंत पवित्र तथा श्रद्धा कहा है। एक प्रकार से यदि देखा जाये तो नारी शिक्षा किसी भी समाज के विकास का मूल आधार मानी जाती है।[2] यह समावेशी केवल ज्ञान अर्जन की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि व्यक्ति के बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास का माध्यम भी है। प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के समग्र व्यक्तित्व का निर्माण करना था, जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों की समान भागीदारी को स्वीकार किया गया था। इस संदर्भ में स्त्री शिक्षा को विशेष महत्व प्रदान किया गया, क्योंकि स्त्री को परिवार और समाज की प्रथम शिक्षिका के रूप में देखा जाता था।[3]

प्राचीन भारतीय चिंतन में यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है कि यदि स्त्री शिक्षित होगी तो पूरा परिवार तथा समाज शिक्षित और संस्कारित बनेगा। यही कारण है कि वैदिक काल में स्त्रियों को पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था। वे न केवल वेदों का अध्ययन करती थीं, बल्कि धार्मिक अनुष्ठानों, दार्शनिक वाद–विवादों तथा बौद्धिक गतिविधियों में भी सक्रिय रूप से भाग लेती थीं। गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा और घोषा4 जैसी विदुषी स्त्रियाँ इस तथ्य का सशक्त प्रमाण हैं कि उस समय स्त्री शिक्षा का स्तर अत्यंत उच्च था।

इसके अतिरिक्त, वैदिक समाज में स्त्रियों को उपनयन संस्कार का अधिकार प्राप्त था, जो औपचारिक शिक्षा की शुरुआत का प्रतीक माना जाता था। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय स्त्रियों को शिक्षा के क्षेत्र में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं झेलना पड़ता था। वे ज्ञान–विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी योग्यता का प्रदर्शन करती थीं और समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त करती थी[6] इस प्रकार, प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में स्त्री शिक्षा न केवल समानता का प्रतीक थी, बल्कि समाज के समग्र विकास का आधार भी थी, जिसका अध्ययन वर्तमान संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है।

शोध विस्तार

प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन का माध्यम नहीं, बल्कि जीवन के समग्र विकास का साधन माना गया था। इस व्यवस्था में स्त्री और पुरुष दोनों को समान रूप से ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था। भारतीय संस्कृति में स्त्री को 'शक्ति' तथा 'प्रकृति' के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, और इसी कारण उसकी शिक्षा को समाज के निर्माण और विकास का मूल आधार माना गया। यदि हम किसी भी समाज की उन्नति का आकलन करना चाहते हैं, तो उस समाज में स्त्रियों की स्थिति और उनकी शिक्षा के स्तर को समझना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा का स्वरूप अत्यंत समृद्ध, व्यापक और उच्च कोटि का था, जिसका प्रमाण वेद, उपनिषद, महाकाव्य तथा पुराणों में प्राप्त होता है। वर्तमान तक सभी ग्रन्थों में माँ को दिव्य, सर्वश्रेष्ठ तथा पूजनीय एवं सर्वोच्च शिक्षक का स्थान दिया गया है।[7] अथर्ववेद में 'पृथ्वीसूक्त' अथवा 'भूमिसूक्त' में भूमि को माता कहा गया है। 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' अर्थात् यह भूमि मेरी माता है।' 'सा नो भूमिवि सुजतां माता पुत्रय में पयम' यानि भूमि मेरी माता है जो मुझे दूध पिलाती है। इसमें भूमि अथवा मातृभूमि के प्रति 63 अत्यंत भावपूर्ण समर्पित मन्त्रों में वन्दना की गई है। महर्षि मनु ने माँ के स्थान को अत्यंत गौरवपूर्ण बताते हुए लिखा है:

> 'उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता । सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते ।।"[8]

'अर्थात् दस उपाध्यायों की अपेक्षा आचार्य, सौ आचार्यों की अपेक्षा पिता और सहस्र पिताओं की अपेक्षा माता का गौरव अधिक है।' उपनिषदों में 'मातृदेवो भव', 'पितृदेव भव' कहकर माँ को प्रथम स्थान दिया गया है। महाभारत में लिखा है: 'गुरुणां चौव सर्वेषां

माता परमको गुरुः' अर्थात् सभी गुरुजनों में माता को परम गुरु माना गया है। पुराणों ने माँ को परम गुरु माना है। लिखा है:

'पतिता गुरवस्त्या माता च न कथञ्चन। गर्भधारणपोषाभ्यां तेन माता गरीयसी ॥"

अर्थात, 'पतित गुरु भी त्याज्य है पर माता किसी प्रकार भी त्याज्य नहीं है। गर्भकाल में धारण–पोषण करने के कारण माता का गौरव, गुरुजनों से भी अधिक है।' पुराणों में एक अन्य स्थान पर मिलता है– 'सर्वन्होन यतिना प्रसूर्वन्या प्रयत्नतः अर्थात् सबके वन्दनीय संन्यासी को भी माता की प्रयत्नपूर्वक वन्दना करनी चाहिए। भारत में देवीभागवतपुराण, मार्कण्डेयपुराण आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ मातृशक्ति पर ही रचे गए।[9]

इस ओर वैदिक काल को भारतीय इतिहास का स्वर्णिम युग कहा जाता है, और इस युग में स्त्रियों को शिक्षा के क्षेत्र में विशेष अधिकार प्राप्त थे। इस काल में स्त्रियाँ केवल गृहस्थ जीवन तक सीमित नहीं थीं, बल्कि वे ज्ञान, दर्शन और आध्यात्मिक चिंतन में भी पुरुषों के समान सहभागी थीं। वेदों में अनेक ऐसी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है जिन्होंने ऋचाओं की रचना की और विद्वता के उच्चतम शिखर को प्राप्त किया।[10] गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, अपाला और घोषा जैसी विदुषी स्त्रियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि उस समय स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध थे। इन स्त्रियों ने न केवल वेदों का अध्ययन किया, बल्कि दार्शनिक वाद–विवाद में भी सक्रिय भाग लिया। विशेष रूप से गार्गी और याज्ञवल्क्य के बीच हुए संवाद का उल्लेख उपनिषदों में मिलता है, जो यह दर्शाता है कि स्त्रियाँ उच्च कोटि के बौद्धिक विमर्श में भी भाग लेती थीं घोषा ऋग्वेद मंडल 10, सूक्त 39 और 40 के मंत्रों की रचयिता थीं , जो अश्विनी कुमारों की स्तुति में हैं। इस क्रम में अपाला द्वारा ऋग्वेद के मंडल 8, सूक्त 91 (8.91.1–7) की रचना की गई , जिसमें इन्द्र की स्तुति है। लोपामुद्रा की रचना ऋग्वेद का मंडल 1, सूक्त 179 (1.179. 1–2) के मंत्र हैं जो रति और वैराग्य के दार्शनिक संवाद पर आधारित हैं। मैत्रेयी बृहदारण्यक उपनिषद में याज्ञवल्क्य के साथ 'अमरत्व' पर दार्शनिक संवाद (आत्मा ही सर्वप्रिय है) से सम्बंधित विदुषी थीं ।[11] गार्गी वाचक्नवी द्वारा बृहदारण्यक उपनिषद में याज्ञवल्क्य के साथ 'ब्रह्म' की प्रकृति पर उच्च स्तरीय दार्शनिक शास्त्रार्थ किया गया । ये उदाहरण इन विदुषियों के मंत्रों का पाठ आध्यात्मिक ज्ञान, योग और ब्रह्मचर्य की महिमा को दर्शाते हैं।

वैदिक काल में स्त्रियों को उपनयन संस्कार का अधिकार भी प्राप्त था, जो शिक्षा की शुरुआत का प्रतीक था। ऋग्वैदिक काल में उपनयन संस्कार के माध्यम से वे ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश करती थीं और गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करती थीं। इस काल में शिक्षा का स्वरूप अत्यंत व्यापक था, जिसमें वेद, उपनिषद, दर्शन, व्याकरण, गणित, खगोलशास्त्र के साथ–साथ संगीत, नृत्य और चित्रकला जैसी कलाओं को भी शामिल किया गया था। स्त्रियाँ इन सभी विषयों में दक्ष होती थीं और समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त करती थीं। यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि उस समय स्त्रियों को धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने और यज्ञ करने का भी अधिकार प्राप्त था, जो उनके उच्च सामाजिक और शैक्षिक स्तर को दर्शाता है।[12]

हालाँकि उत्तरवैदिक काल में स्त्री शिक्षा की स्थिति में कुछ परिवर्तन देखने को मिलते हैं। इस काल में समाज में धीरे–धीरे रूढ़िवादिता का प्रभाव बढ़ने लगा, जिसके कारण स्त्रियों की स्वतंत्रता और शिक्षा के अवसरों में कमी आने लगी। हालांकि इस काल में भी स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्त करती थीं, लेकिन उनकी संख्या और अवसरों में कमी देखी गई। अब शिक्षा का केंद्र धीरे–धीरे पुरुषों तक सीमित होने लगा और स्त्रियों को अधिकतर घरेलू कार्यों तक सीमित किया जाने लगा। फिर भी, कुछ विदुषी स्त्रियाँ इस काल में भी विद्यमान थीं,[13] जो अपने ज्ञान और विद्वता के लिए जानी जाती थीं। यह परिवर्तन इस बात का संकेत है कि समाज में पितृसत्तात्मक प्रवृत्तियाँ धीरे–धीरे मजबूत हो रही थीं, जिसने स्त्री शिक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव डाला।

इस क्रम में बौद्ध काल में स्त्री शिक्षा की व्यवस्था काफी प्रगतिशील थी क्योंकि महात्मा बुद्ध ने महिलाओं को भिक्षुणी संघ में प्रवेश की अनुमति देकर उनके लिए शिक्षा और आध्यात्मिकता के द्वार खोल दिए थे। इस युग में शिक्षा का मुख्य केंद्र बौद्ध मठ और विहार होते थे जहाँ स्त्रियाँ रहकर बौद्ध दर्शन, अनुशासन के नियमों और धार्मिक ग्रंथों का गहरा अध्ययन करती थीं। यह शिक्षा केवल किताबी ज्ञान तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसमें आत्म–चिंतन और व्यावहारिक जीवन के कौशल भी शामिल थे। इस काल की सबसे बड़ी उपलब्धि 'थेरीगाथा'[14] जैसे ग्रंथों की रचना है, जो बौद्ध भिक्षुणियों द्वारा लिखे गए काव्य और उनके अनुभवों का अनूठा संग्रह है। इसने सिद्ध किया कि स्त्रियाँ न केवल उच्च कोटि की शिष्याएँ थीं, बल्कि वे विदुषी और शिक्षिकाएँ भी थीं जो दूसरों को मार्ग दिखाती थीं। समाज के उच्च वर्गों की जो कन्याएँ संघ में शामिल नहीं होती थीं, उनके लिए घर पर ही शिक्षा की व्यवस्था रहती थी। संक्षेप में, बौद्ध काल ने महिलाओं को मानसिक और आध्यात्मिक स्वतंत्रता प्रदान की, जिससे वे पुरुष प्रधान समाज में अपनी बौद्धिक क्षमता और व्यक्तिगत पहचान स्थापित करने में सफल रहीं। बौद्ध काल की प्रमुख विदुषी महिलाओं में महाप्रजापति गौतमी का नाम सबसे ऊपर आता है,[15] जिन्होंने प्रथम भिक्षुणी बनकर महिला संघ की नींव रखी थी। उनके साथ ही खेमा और उत्पलवर्णा जैसी महिलाएं अपनी असाधारण बुद्धि और तार्किक शक्ति के लिए प्रसिद्ध हुईं, जिन्हें बुद्ध ने स्वयं अपनी प्रमुख शिष्याओं का दर्जा दिया था। धम्मदिन्ना जैसी विदुषियों के दार्शनिक ज्ञान की प्रशंसा स्वयं बुद्ध ने की थी,[16] जबकि विशाखा जैसी महिलाओं ने गृहस्थ जीवन में रहकर भी शिक्षा और संघ के प्रबंधन में बड़ा योगदान दिया।

इन विदुषियों के जीवन और शिक्षा का मुख्य केंद्र बौद्ध मठ और विहार थे, जहाँ की अनुशासन व्यवस्था अत्यंत कड़ी और व्यवस्थित होती थी। भिक्षुणियों को 'विनय पिटक' में वर्णित भिक्षुणी विनय के नियमों का पालन करना पड़ता था,[17] जिसमें दिनचर्या, अध्ययन के घंटे और भिक्षाटन के कड़े नियम शामिल थे। उन्हें पुरुषों के संघ से अलग रहकर अपनी व्यवस्था स्वयं चलानी होती थी, जिससे उनमें नेतृत्व और आत्मनिर्भरता के गुण विकसित हुए। यह व्यवस्था न केवल उन्हें आध्यात्मिक रूप से परिपक्व बनाती थी, बल्कि उन्हें समाज में एक शिक्षक और मार्गदर्शक के रूप में भी स्थापित करती थी

मौर्य और गुप्त काल में स्त्री शिक्षा की स्थिति मिश्रित रही। मौर्य काल में कुछ हद तक स्त्रियों को शिक्षा के अवसर प्राप्त थे, लेकिन गुप्त काल में सामाजिक प्रतिबंधों के कारण स्त्री शिक्षा में गिरावट आई। इस काल में बाल विवाह, पर्दा प्रथा और अन्य सामाजिक कुरीतियों का प्रभाव बढ़ने लगा, जिसके कारण स्त्रियाँ शिक्षा से दूर होने लगीं। शिक्षा का क्षेत्र अब मुख्यतः पुरुषों तक सीमित हो गया[18] और स्त्रियों की भूमिका घरेलू कार्यों तक सीमित कर दी गई। यह स्थिति इस बात को स्पष्ट करती है कि सामाजिक संरचना में परिवर्तन का सीधा प्रभाव शिक्षा प्रणाली पर पड़ता है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी गुरुकुल पद्धति थी। गुरुकुल प्रणाली के अंतर्गत सामूहिक शिक्षा प्रदान की जाती थी, जहाँ छात्र और छात्राएँ दोनों गुरु के सान्निध्य में रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। शिक्षा की प्रक्रिया मौखिक थी, जिसमें श्रवण, मनन और निदिध्यासन के माध्यम से

ज्ञान का संप्रेषण किया जाता था। इस प्रणाली में अनुशासन, आत्मसंयम और नैतिकता पर विशेष बल दिया जाता था।[19] स्त्रियाँ भी इस प्रणाली का हिस्सा थीं और वे समान रूप से शिक्षा प्राप्त करती थीं। यह प्रणाली केवल ज्ञान प्रदान करने तक सीमित नहीं थी, बल्कि व्यक्ति के चरित्र निर्माण और नैतिक विकास पर भी केंद्रित थी।

पाठ्यक्रम की दृष्टि से प्राचीन स्त्री शिक्षा अत्यंत समृद्ध थी। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में स्त्री शिक्षा का स्वरूप अत्यंत व्यापक और बहुआयामी था। उस काल में शिक्षा का उद्देश्य केवल किताबी ज्ञान तक सीमित न रहकर महिला के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना था। पाठ्यक्रम की दृष्टि से इसे तीन मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है: बौद्धिक, व्यावहारिक और सांस्कृतिक।

बौद्धिक और आध्यात्मिक आधार

बौद्धिक स्तर पर स्त्रियों को वेदों, उपनिषदों और पुराणों का गहन अध्ययन कराया जाता था। ऋग्वेद की ऋचाओं की रचना करने वाली 'लोपामुद्रा' और 'घोषा' जैसी विदुषियां और शास्त्रार्थ में बड़े–बड़े विद्वानों को निरुत्तर करने वाली 'गार्गी' एवं 'मैत्रेयी' इसी शिक्षा पद्धति की देन थीं। उन्हें दर्शन, तर्कशास्त्र और व्याकरण जैसे कठिन विषयों की शिक्षा दी जाती थी, जिससे उनकी निर्णय क्षमता और तार्किक सोच विकसित होती थी। यह शिक्षा उन्हें समाज में पुरुषों के समकक्ष वैचारिक धरातल पर खड़ा करती थी।[20]

व्यावहारिक और जीवनोपयोगी कौशल

शिक्षा का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष व्यावहारिक था। स्त्रियों को गृह प्रबंधन के साथ–साथ अर्थशास्त्र और चिकित्सा (आयुर्वेद) का ज्ञान भी दिया जाता था। हस्तकला, कताई–बुनाई और औषधियों के प्रयोग की शिक्षा उन्हें परिवार और समाज के लिए उपयोगी बनाती थी। युद्ध काल या विशेष परिस्थितियों के लिए कुछ क्षत्रिय कन्याओं को अस्त्र–शस्त्र चलाने और राजनीति की शिक्षा भी दी जाती थी[21], जो उनकी आत्मनिर्भरता का प्रमाण था।

सांस्कृतिक और ललित कलाएं

सांस्कृतिक पक्ष के अंतर्गत संगीत, नृत्य, चित्रकला और काव्य रचना को विशेष स्थान प्राप्त था। 'चौसठ कलाओं' का ज्ञान एक आदर्श शिक्षित स्त्री के व्यक्तित्व का हिस्सा माना जाता था।[22] यह शिक्षा उनके भीतर संवेदनशीलता और सृजनात्मकता का विकास करती थी, जिससे समाज में सौंदर्य और संस्कृति का संरक्षण होता था।

इस प्रकार प्राचीन काल में स्त्री शिक्षा का ढांचा अत्यंत संतुलित था। जहाँ बौद्धिक शिक्षा ने उन्हें मानसिक स्वावलंबन दिया, वहीं व्यावहारिक और सांस्कृतिक शिक्षा ने उन्हें सामाजिक और आर्थिक रूप से सक्षम बनाया। यह पाठ्यक्रम आज की आधुनिक शिक्षा प्रणाली के लिए भी एक प्रेरणा है, जो समग्र विकास (Holistic Development) की बात करती है।

वस्तुतः प्राचीन भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा का प्रभाव अत्यंत व्यापक था। शिक्षित स्त्रियाँ परिवार को संस्कारित बनाती थीं और बच्चों के नैतिक एवं बौद्धिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। समाज में भी उनका प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता था, क्योंकि वे सामाजिक और धार्मिक गतिविधियों में सक्रिय भाग लेती थीं। राष्ट्र निर्माण में भी स्त्रियों का योगदान महत्वपूर्ण था, क्योंकि वे आने वाली पीढ़ी को शिक्षित और संस्कारित बनाती थीं। इस प्रकार स्त्री शिक्षा को समाज के समग्र विकास का आधार माना जा सकता है।

हालाँकि समय के साथ स्त्री शिक्षा में गिरावट भी आई, लेकिन इसके मूल कारण सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक थे। पितृसत्तात्मक व्यवस्था, बाल विवाह, पर्दा प्रथा और अन्य सामाजिक कुरीतियों ने स्त्रियों की शिक्षा को प्रभावित किया। इसके बावजूद, प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली के आदर्श आज भी प्रासंगिक हैं और उनसे वर्तमान शिक्षा व्यवस्था को दिशा दी जा सकती है। आज के समय में स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है कि उन्हें समान अवसर प्रदान किए जाएँ और शिक्षा के माध्यम से उन्हें आत्मनिर्भर बनाया जाए।[23]

अंततः यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में स्त्री शिक्षा का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण था। वैदिक काल में स्त्रियाँ शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी थीं और उन्होंने समाज के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। समय के साथ भले ही उनकी स्थिति में गिरावट आई हो, लेकिन उनके आदर्श और योगदान आज भी प्रेरणादायक हैं। वर्तमान समाज के लिए आवश्यक है कि वह प्राचीन भारतीय स्त्री शिक्षा के मूल्यों को अपनाकर एक समतामूलक और विकसित समाज का निर्माण करे।

निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली के अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित होता है कि उस समय स्त्रियों को शिक्षा के क्षेत्र में अत्यंत सम्मानजनक और सशक्त स्थान प्राप्त था। विशेष रूप से वैदिक काल में स्त्री और पुरुष के बीच शिक्षा के अवसरों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था। स्त्रियाँ न केवल वेदों और उपनिषदों का अध्ययन करती थीं, बल्कि वे दार्शनिक चिंतन, शास्त्रार्थ, धार्मिक अनुष्ठानों तथा सामाजिक गतिविधियों में भी सक्रिय रूप से भाग लेती थीं। गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा और घोषा जैसी विदुषी स्त्रियों के उदाहरण यह प्रमाणित करते हैं कि उस समय स्त्री शिक्षा का स्तर अत्यंत उच्च और समृद्ध था। यह भी महत्वपूर्ण है कि वैदिक काल में स्त्रियों को उपनयन संस्कार का अधिकार प्राप्त था, जो औपचारिक शिक्षा की शुरुआत का प्रतीक माना जाता था। इससे यह सिद्ध होता है कि शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें समान अवसर प्रदान किए जाते थे। इसके अतिरिक्त, शिक्षा का स्वरूप भी व्यापक और समग्र था, जिसमें बौद्धिक, नैतिक, सांस्कृतिक तथा व्यावहारिक सभी पक्षों का समावेश था। इस प्रकार की शिक्षा स्त्रियों को आत्मनिर्भर, विचारशील और समाजोपयोगी बनाती थी।

हालाँकि उत्तरवैदिक, बौद्ध, मौर्य और विशेष रूप से गुप्त काल में स्त्री शिक्षा की स्थिति में जो धीरे–धीरे गिरावट देखने को मिलती है। इसके पीछे सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक कारण प्रमुख रहे, जैसे पितृसत्तात्मक व्यवस्था का सुदृढ़ होना, बाल विवाह, पर्दा प्रथा और स्त्रियों की स्वतंत्रता पर बढ़ते प्रतिबंध। इन कारणों से स्त्रियाँ शिक्षा से वंचित होने लगीं और उनका क्षेत्र मुख्यतः घरेलू कार्यों तक सीमित कर दिया गया। यह परिवर्तन इस बात को दर्शाता है कि किसी भी समाज की सामाजिक संरचना और मान्यताएँ शिक्षा व्यवस्था को गहराई से प्रभावित करती हैं। इसके बावजूद, प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में स्त्री शिक्षा के जो आदर्श और मूल्य स्थापित किए गए थे, वे आज भी अत्यंत प्रासंगिक हैं। वर्तमान समय में जब लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण पर विशेष बल दिया जा रहा है, तब प्राचीन भारत की शिक्षा व्यवस्था से प्रेरणा लेना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। यदि हम स्त्रियों को समान शैक्षिक अवसर प्रदान करें, उन्हें आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रोत्साहित करें और उनके बौद्धिक तथा नैतिक विकास पर ध्यान दें, तो समाज के समग्र विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है। अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में स्त्री शिक्षा केवल एक सामाजिक आवश्यकता नहीं थी, बल्कि यह राष्ट्र निर्माण की आधारशिला थी। आधुनिक समाज के लिए यह अनिवार्य है कि वह इन प्राचीन आदर्शों को पुनर्जीवित करे, स्त्री शिक्षा को प्राथमिकता दे और एक समतामूलक, प्रगतिशील एवं ज्ञान–आधारित समाज के निर्माण की दिशा में ठोस प्रयास करे।

सन्दर्भ सूची

1. अल्टेकर, ए. एस. (1934). प्राचीन भारत में शिक्षा. वाराणसी: इंडियन बुक शॉप, पेज 34
2. दास, एस. के. (2013). प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली. नई दिल्ली: ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, पेज 12।
3. काणे, पी. वी. (1962). धर्मशास्त्र का इतिहास (खंड 5). पुणे: भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च संस्थान, पेज 119।
4. सरकार, एस. सी. (1979). प्राचीन भारत में शिक्षा एवं संस्थाएँ. पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पेज 21।
5. पांडेय, आर. एस. (1995). शिक्षा दर्शन. आगरा: विनोद पुस्तक मंदिर, पेज 98।
6. लाल, रमण बिहारी (2008). समकालीन भारत में शिक्षा. मेरठ: आर. लाल बुक डिपो, पेज 76।
7. शर्मा, रामशरण (2005). प्राचीन भारत का इतिहास. नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान, पेज 43।
8. थापर, रोमिला (2004). प्राचीन भारत. नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स, पेज 34।
9. चतुर्वेदी, बी. के. (2010). भारतीय शिक्षा का इतिहास. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, पेज 21।
10. मिश्रा, एस. पी. (2009). भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास. वाराणसी: विश्व भारती प्रकाशन, पेज 56।
11. उपाध्याय, बलदेव (1971). भारतीय दर्शन. वाराणसी: शारदा मंदिर, पेज 9।
12. द्विवेदी, हजारी प्रसाद (2003). भारतीय संस्कृति के स्वरूप. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पेज 23।
13. सिंह, योगेन्द्र (2001). भारतीय समाज और संस्कृति. नई दिल्ली: रावत प्रकाशन, पेज 87।
14. अग्रवाल, जे. सी. (2006). भारतीय शिक्षा का विकास और समस्याएँ. नई दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाउस, पेज 32।
15. वर्मा, एस. एल. (2012). प्राचीन भारतीय समाज. जयपुर: पंचशील प्रकाशन, पेज 55।
16. वेदव्यास. महाभारत गीता प्रेस, गोरखपुर.
17. वाल्मीकि. रामायण गीता प्रेस, गोरखपुर.
18. ऋग्वेद गीता प्रेस, गोरखपुर.
19. यजुर्वेद गीता प्रेस, गोरखपुर.
20. सामवेद गीता प्रेस, गोरखपुर.
21. अथर्ववेद गीता प्रेस, गोरखपुर.
22. उपनिषद (विभिन्न) गीता प्रेस, गोरखपुर ।